बारह भावना

(आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

बंदूँ पंच परम गुरु, आगम चक्षु महान।
गाऊँ बारह भावना, सर्व लोक सुख दान।।

अनित्य भावना

अहो ! कौन इस जग में अपना, किस को अपना मानूँ।
साथी सभी पराये होंगे, किसको अपना जानूँ।।
धन्य शलाका पुरुष एक दिन, सब मृत्यु के साथी।
है अनित्य का खेल यहाँ सब, रथिक पियादे हाथी।।

अशरण भावना

अहो आत्मन् ! शरण खोजता चहुँगति शरण न पावे।
नूतन घर-परिवार सजावे, अशरण ही कहलावे।।
परम दिगम्बर देव धर्म गुरु, ये ही शरण कहाते।
निज चैतन्य देव शरणागत, भविजन शिवगति पाते।।

संसार भावना

अहो आत्मन् चतुर्गति में, जनम-मरण दुःख पाया।
पुण्य उदय से संपत्ति पाई, मन फिर भी ललचाया।।
यह संसार वास दुःखकारी, क्षणिक शांति न पावे।
सहज शुद्ध ज्ञायक प्रभु ध्यावो, जो पंचमगति ल्यावे।।

एकत्व भावना

स्त्री-पुत्र स्वजन-परिजन सब, पुण्य उदय जब साथी।
जीव असाता समय अकेला, किसका कौन संगाती।।
यह संसार स्वार्थगृह भाई, कोई काम न आवे।

एक निजातम ही साँचा गृह, ज्ञानी निज गृह पावे।।

अन्यत्व भावना

अहो आत्मन् ! मोह उदय में, स्व-पर भेद न जाना।
तन-धन-परिजन स्वजन सभी को, अपना अपना माना।।
हाय-हाय यह भूल अनादि, कबहुँ न बिसराई।
जिनवाणी सुन पर-रुचि त्यागो, सद्गुरु शिक्षा दाई।।

अशुचि भावना

अहो आत्मन् ! महा अशुचि तन, अज्ञानी नित चावे।
नाना भूषण अलंकार से, यह तन नित्य सजावे।।
नाना सुरभित लेप करे, श्रृंगार करे, सुख माने।
सुख का कारण शुद्धज्ञानमय चेतन न पहिचाने।।

आस्रव भावना

अहो आत्मन् ! मिथ्यादर्शन, अविरति भाव बनाये।
अन्य प्रमाद कषाय योग सब, आस्रव भाव धराये।।
पुण्य-पाप रागादि भाव, जो दुःखमय हैं, सुख माना।
शुद्ध निरास्रव वीतराग निज ज्ञायक न पहिचाना।।

संवर भावना

अहो आत्मन्! तेरह विध चारित्र हृदय स्वीकारो।
द्वादश अनुप्रेक्षा दसधर्म परिषह बाइस धारो।।
शुभ भावों से अशुभ भाव का संवर पूर्व लहावे।
शुद्धभाव से भावशुभाशुभ संवर पूर्ण कहावे।।

निर्जरा भावना

अहो आत्मन्! समय-समय सविपाक निर्जरा पाई।
कर्म आस्रव रहा निरंतर कर्म विजय न पाई।।
स्वात्मयोग, शुद्धोपयोग अविपाक निर्जरा दाता।
ज्ञानी संवर-निर्जर पथ से मुक्तिवधु को लाता।।

लोक भावना

अहो आत्मन्! छह द्रव्यों का रहता जहाँ बसेरा।
चौदह राजु लोक अनादि, भव भूतों का डेरा।।
जन्म-मरण इक-इक प्रदेश पर हाय अनन्तों पाये।
कभी असंख प्रदेश निजातम प्रभु न हृदय समाये।।

बोधि दुर्लभ भावना

अहो आत्मन्! पुण्य उदय से, नरभव तूने पाया।
बाह्य विभव श्रावक व्रत-मुनिव्रत, किंतु न समकित भाया।।
नव ग्रीवक तक सौख्य लहा, रे बोधि ज्ञान न जागा।
सिद्ध समा भगवान आत्मा, भव-भव भ्रमा अभागा।।

धर्म भावना

अहो आत्मन्! अरिहंतों ने धर्म अहिंसा गाया।
रागद्वेष-मद-मोहरहित वस्तुस्वभाव बतलाया।।
सर्व पंथ के वसन उतारो, मोक्षपंथ उर धारो।
वीतरागमय धर्म ही साँचा, चेतन भूल सुधारो।।
जो भवि बारह भावना, भाव सहित नित भाय।
परमदशा वैराग्य की, वह विमर्श प्रगटाय।।